झगड़े पर विजय पाना

प्रभु यीशु ने प्रार्थना की कि उसके सब अनुयायी एक हों (यूहन्ना 17:20, 21)। पौलुस ने मसीही लोगों से आग्रह किया कि तुम सब ''एक ही मन और एक ही मत होकर मिले रहो'' (1 कुरिन्थियों 1:10)। ''शत्रुता,'' ''झगड़े,'' ''क्रोध, लड़ाइयां, मतभेद'' और ''गुटबाज़ियों'' को शरीर के काम बताया गया है जो मसीही लोगों को परमेश्वर की राज्य की मीराश पाने से दूर करते हैं (गलतियों 5:19-21)। इन प्रार्थनाओं और चेतावनियों के बावजूद, झगड़ा आज की मण्डलियों की एक प्रमुख समस्या है।

वास्तव में झगड़ा ही वह सामान है जिसके साथ दूसरी बहुत सी समस्याएं जुड़ी हुई हैं। उदाहरण के लिए प्रचारकों और ऐल्डरों के बीच मतभेद, सहूलियतें देने या मिशन कार्य में असहमतियां और शिक्षा से जुड़े विवाद कई बार झगड़े का कारण बनते हैं। कलीसिया का अगुआ यदि सफलतापूर्वक अगुआई करना चाहता है तो उसके लिए आवश्यक है कि वह जो कुछ भी करने के लिए तैयार है उस सब में झगड़े की समस्या पर काबू पाने के लिए कलीसिया की सहायता करने के लिए तैयार हो। ऐसा करने के लिए उसे तीन प्रश्नों का उज़र पता होना चाहिए।

झगड़ा ज़्या है?

''झगड़ा'' से हमारा अभिप्राय विचार के मतभेद या ''विवाद'' नहीं होता। ज़्यों? ज़्योंकि विचारों के मतभेद तो रहेंगे ही और इस अर्थ में कलीसिया में झगड़ा भी रहेगा। यह तथ्य नहीं है कि लोगों के विचार अलग - अलग होने से कलीसिया में झगड़े पैदा होते हैं। पौलुस और बरनबास एक अवसर पर एक दूसरे से बिल्कुल अलग थे, परन्तु उनके झगड़े के कारण कलीसिया को कोई नुकसान नहीं हुआ था। समस्याओं का कारण लोगों में पाए जाने वाले मतभेद नहीं बल्कि उन मतभेदों को दूर करने के लिए लोगों द्वारा अपनाए जाने वाले ढंग हैं।

यहां इस्तेमाल किए गए ''झगड़ा'' शज़्द के लिए अंग्रेज़ी शज़्द ''strife'' की एक अंग्रेज़ी शज़्दकोश में परिभाषा ''लड़ना; झगड़ना'' की गई है।[1] एक और शज़्दकोश में इसका अर्थ ''तीखा, कई बार हिंसात्मक विवाद या मतभेद'' या ''लड़ने का कार्य अर्थात झगड़ा, संघर्ष'' और उसमें पर्यायवाची शज़्द के रूप में ''कलह'' और विपरीत अर्थ के रूप में ''शांति, समझौता'' दिया गया है।[2] गलतियों 5:20 में यूनानी शज़्द जिसका अनुवाद RSV, NRSV और NASB में ''strife'' (और हिन्दी की बाइबल में ''विरोध'' जो कि KJV के ''variance'' का ही अनुवाद है) का अनुवाद कभी ''झगड़ा'' तो कहीं ''मुकदमा''

हुआ है।[3] *वाइन'स ऐक्सपोज़िटरी डिक्शनरी ऑफ़ न्यू टैस्टामेंट वर्ड्स* के अनुसार इसका अर्थ ''झगड़ा, विवाद'' है और यह ''शत्रुता की अभिव्यक्ति'' है।

इसलिए ''झगड़ा'' से हमारा अर्थ शत्रुता के कारण चलती रहने वाली लड़ाई या हाथापाई है जो कलीसिया के सदस्यों के बीच फूट या मतभेद का कारण बनती है।

झगड़ा निपटाना आना क्यों ज़रूरी है?

कलीसिया के अगुओं के लिए झगड़े की समस्या का समाधान करना क्यों ज़रूरी है?

अगुओं को कलीसिया में होने वाले झगड़े को निपटाना आना चाहिए, क्योंकि पहली बात तो यह कि फूट या झगड़ा एक पाप है। इसके अलावा गलातियों 5:19-21, जो सिखाता है कि झगड़ा ''शरीर का काम'' है, रोमियों 1:29-31 में भी पापों की सूची में झगड़े को ''हत्या'' और ''छल'' के बीच में रखा गया है। उन छह बातों में जिनसे प्रभु घृणा करता है ''भाइयों के बीच में झगड़ा उत्पन्न करने वाला मनुष्य'' (नीतिवचन 6:19) है।

दूसरी बात, जब तक झगड़ा नहीं मिटता तब तक कलीसिया उन्नति नहीं कर सकती। (1) कलीसिया के लोग अंदरूनी झगड़ों में इस तरह उलझे रहेंगे कि उनमें उन्नति में बाहर के लोगों में प्रचार करने के लिए समय या ऊर्जा ही नहीं रहेगी। (2) जिन लोगों को मसीह के लिए जीता जा सकता था वे कलीसिया के लोगों के बीच हलचल या झगड़े के कारण वापस चले जाएंगे। इसमें हमारे अपने बच्चे भी शामिल हैं, जिनमें से अधिकतर बच्चे कलीसिया को छोड़कर इस लिए बाहर चले जाते हैं क्योंकि उन्हें कलीसिया में लड़ाइयां और झगड़े दिखते हैं। (3) आम तौर पर झगड़े के कारण कलीसिया टूट जाती है या कुछ सदस्य छोड़कर चले जाते हैं, या रह जाने वाले सदस्य दुखी रहते हैं। इन में से कोई भी कारण न केवल कलीसिया को पीछे ले जाता है बल्कि उससे भी बुरी हालत में, और निकट भविष्य में उसका विकास सम्भव नहीं होता।

तीसरी बात, मण्डलियों को झगड़े को मिटाने के लिए कठिन परिश्रम करना चाहिए। क्योंकि कलीसिया में यह आम बात है। (1) प्रेरितों के बीच झगड़ा हुआ था (मत्ती 20:20-28)। (2) प्रारम्भिक कलीसिया में झगड़ा हुआ था जैसा कि प्रेरितों के काम की पुस्तक से पता चलता है। प्रेरितों 6:1 के अनुसार, ''यूनानी भाषा बोलने वाले इब्रानियों पर कुड़कुड़ाने लगे।'' (प्रेरितों 15 अध्याय भी देखिए.) (3) कुरिन्थुस की कलीसिया में झगड़े के कारण ही फूट पड़ी थी (1 कुरिन्थियों 1:11)। (4) फिलिप्पे की प्रिय कलीसिया में भी झगड़ा हुआ था; दो महिलाओं से मिलकर रहने का आग्रह किया गया था (फिलिप्पियों 4:2)। (5) झगड़ा और भी कई जगह था, क्योंकि पत्रियों की आयतों में इस समस्या का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख है (उदाहरण के लिए रोमियों 14:19 अध्याय)। (6) आज ऐसी कलीसिया ढूंढ़ना बहुत मुश्किल है जिसमें कोई झगड़ा न हो।

झगड़े को दूर कैसे किया जा सकता है?

झगड़े को कम करने के लिए दो बातें आवश्यक हैं: परहेज और इलाज।

झगड़े का परहेज़

सबसे अच्छा इलाज तो परहेज़ ही है। एकता पाने के लिए कोई भी कोशिश झगड़े को कम ही करेगी। कलीसिया के अगुवे निम्नलिखित छह तरह से सहायता कर सकते हैं।

प्रचार व शिक्षा के द्वारा। आदर्श रूप में, कलीसिया को इस विषय पर किसी भी प्रकार की समस्या पैदा होने से पहले ही प्रचार करना तथा सिखाना चाहिए। कलीसिया के सदस्यों को समझना चाहिए कि मसीह चाहता है कि उसके लोग एक रहें (यूहन्ना 17:20, 21) और ''मेल के बंध में आत्मा की एकता का यत्न'' करें (इफिसियों 4:3)। उन्हें यह पता होना चाहिए कि परमेश्वर फूट डालने के पाप से घृणा करता है (नीतिवचन 6:19) और मसीह चाहता है कि हम लोगों में प्रेम करने वाले लोगों के रूप में जाने जाएं (यूहन्ना 13:34, 35)। नीतिवचन के अनुसार उन्हें यह सीखना चाहिए, कि समझदार व्यक्ति झगड़े से दूर रहता है:

> वैर से तो झगड़े उत्पन्न होते हैं, परन्तु प्रेम से सब अपराध ढंप जाते हैं (नीतिवचन 10:12)।
>
> टेढ़ा मनुष्य बहुत झगड़े को उठाता है, और कानाफूसी करने वाला परम मित्रों में भी फूट करा देता है (नीतिवचन 16:28)।
>
> झगड़े का आरम्भ बांध के छेद के समान है, झगड़ा बढ़ने से पहिले उसको छोड़ देना उचित है (नीतिवचन 17:14)।
>
> बात बढ़ाने से मूर्ख मुकदमा खड़ा करता है, और अपने को मार खाने के योग्य दिखाता है (नीतिवचन 18:6)।
>
> मुकदमे से हाथ उठाना, पुरुष की महिमा ठहरती है; परन्तु सब मूढ़ झगड़ने को तैयार होते हैं (नीतिवचन 20:3)।
>
> लालची मनुष्य झगड़ा मचाता है, और जो यहोवा पर भरोसा रखता है वह हृष्टपुष्ट हो जाता है (नीतिवचन 28:25)।
>
> क्रोध करने वाला मनुष्य झगड़ा मचाता है और अत्यन्त क्रोध करने वाला अपराधी भी होता है (नीतिवचन 29:22)।
>
> क्योंकि जैसे दूध के मथने से मक्खन, और नाक के मरोड़ने से लोहू निकलता है, वैसे ही क्रोध के भड़काने से झगड़ा उत्पन्न होता है (नीतिवचन 30:33)।

उन्हें ''बकबक करने और दूसरों के काम में हाथ डालने और अनुचित बातें बोलने'' वाले बनने के विरुद्ध भी चेतावनी देनी चाहिए (1 तीमुथियुस 5:13; रोमियों 1:29 और 2 कुरिन्थियों

12:20 भी देखिए)। बेशक यह सारी शिक्षा *प्रेम में* और *सच्चाई से* हो (इफिसियों 4:15)।

एकता का नमूना देकर। कलीसिया के अगुओं को एकता का नमूना पेश करना चाहिए। यदि ऐल्डर और प्रचारक ''आपस में मिलकर'' (भजन 133:1) नहीं रहते तो वे मण्डली के दूसरे सदस्यों से इसकी अपेक्षा कैसे कर सकते हैं?

लोगों को मिलाकर। कलीसिया के अगुओं को ऐसी कलीसिया बनाने की कोशिश करनी चाहिए जो प्रेम से सहभागिता रखती हो, जिसमें ''परिवार का माहौल'' हो और एक दूसरे को ''भाई'' और ''बहन'' कहा जाता हो। ऐसा कैसे हो सकता है?

आरज़्भ करने के लिए, वे आराधना सभाओं के अलावा बाइबल कलासों, काम के अन्य दिनों, विशेष प्रोजेज़्टों आदि के लिए उन्हें एक दूसरे के साथ मिलने का अवसर दे सकते हैं, जिसमें मसीही लोगों के लिए एक दूसरे को अच्छी तरह जानने का अवसर प्राप्त हो सकता है। विशेषकर मिलकर भोजन करना कलीसिया के लिए अच्छा अवसर हो सकता है। यदि पवित्र लोगों के साथ ''संगति तोड़ने'' के लिए, ''खाना भी न खाना'' आवश्यक है (1 कुरिन्थियों 5:11), तो ''संगति रखने'' के लिए खाना खाना भी उतना ही आवश्यक है!

कलीसिया में सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाकर। ऐसा वातावरण बनाने के लिए, कलीसिया के अगुवे आराधना सभाओं को जोशपूर्ण बना सकते हैं। जब आराधना सभा नीरस हो तथा गाने में कोई जोश न हो और प्रचार पूरी तरह से नकारात्मक हो, तो लोग निराश होकर जा सकते हैं। जिससे वे न तो परमेश्वर के निकट आएंगे और न लोगों के, अर्थात वे वैसे ही रहेंगे जैसे आराधना में आने से पहले थे। दूसरी ओर, जोश से भरे गाने गाकर और जोशीला प्रचार करके गर्मजोशी से की गई आराधना लोगों को एक दूसरे के निकट ला सकती है। इसके अलावा अगुवे लोगों को नाम से जान सकते हैं, लोगों के नाम का इस्तेमाल करके कोई बात कह सकते हैं और सदस्यों को एक दूसरे के नाम से जान सकते हैं। बीमार, दुखी या निराश लोगों का नाम लेकर उनके लिए प्रार्थना करने को कहा जाना चाहिए। इसके अलावा कलीसिया के अगुवे जब भी सज़्भव हो, जैसे भी हो, जितने भी सदस्यों की सराहना कर सकते हों, करके सौहार्दपूर्ण माहौल बना सकते हैं।

विभिन्न विचारों को जगह देकर। कलीसिया के अगुओं को ऐसी संगति बनाने की कोशिश करनी चाहिए जिसमें अलग - अलग विचारों को जगह दी जा सके। *सब* प्रश्नों पर कठोरतापूर्वक एक नियम बनाने की कोशिश करने का अर्थ शांति बनाने के बजाय झगड़ा पैदा करना है।

अगुआई करने के ''खुले'' ढंग को अपनाकर। कलीसिया के अगुओं को अपनी योजनाओं और दिलचस्पियों के बारे में, समय - समय पर अपने ध्यान में आने वाली बातों से सदस्यों को अवगत कराने, सबसे सलाह लेने और सहायता का स्वागत करने के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें देखना चाहिए कि निर्णय बहुमत के बजाय सर्वसज़्मति से और सबसे सलाह लेने के बाद लिए जाते हैं। कलीसिया के अगुओं को अलप मत के आतंक से अर्थात एक आदमी या लोगों के किसी छोटे से गुट के आतंक से, जो दूसरों के सुझाव का विरोध करके ''कलीसिया को चलाने'' लगते हैं, बचना चाहिए। ऐसा होने से रोकने के

लिए, उनसे साफ़ - साफ़ कह देना चाहिए कि ''हम कलीसिया के प्रत्येक सदस्य का सम्मान करते हैं। हम सच्चे मन से आपके विचार का स्वागत करते हैं। यदि, आपकी बात सुनने के बाद हमें लगता है कि उससे कोई अच्छी बात सामने आई है, और अधिकांश सदस्य उससे सहमत हैं, तो हम आपकी सलाह की जगह उसे प्राथमिकता देंगे। ऐसा होने पर, हमें आशा है कि आप इसे अपनी शान के खिलाफ नहीं मानेंगे बल्कि हमारे साथ पहले की तरह काम करते रहेंगे, हमारी सहायता करेंगे और हमारे साथ प्रार्थना करेंगे कि प्रभु के महान कार्य को मिलकर पूरा करेंगे। हमें आपकी ज़रूरत है।''

झगड़े का इलाज

हम चाहे इसके खिलाफ कितना भी प्रचार या काम करें या इससे बचने की कोशिश करें, लेकिन स्थानीय कलीसिया में झगड़ा हो ही जाएगा। फिर ज़्या किया जा सकता है ?

समस्या को समझकर उसका समाधान करना चाहिए। प्रेरितों 6 अध्याय में, कलीसिया के अगुओं ने यह देखने के लिए प्रतीक्षा *नहीं* की कि झगड़ा कैसे समाप्त होता है या यह नहीं सोचा कि समस्या पैदा करने वाले गड़बड़ करने वाले लोग हैं इसलिए उनकी शिकायत सुनने का सवाल ही पैदा नहीं होता। उन्होंने कुड़कुड़ाने के विरुद्ध या कलीसिया को अपना निर्णय स्वयं लेने का प्रचार नहीं किया बल्कि उन्होंने समस्या का समाधान किया। वैसे ही आज भी झगड़ों का निपटारा किया जाना आवश्यक है। जैसे पौलुस ने यूओदिया और सुन्तुखे को एक मन रहने का आग्रह किया था (फिलिप्पियों 4:2), वैसे ही कलीसिया के अगुओं से उन भाइयों के बीच समझौता करने की कोशिश करनी चाहिए जो सहमत न हों। कैसे ?

पहले तो, कलीसिया के अगुवे उनसे अलग - अलग बात करके समझौता करने का प्रयास कर सकते हैं, जो मान न रहे हों या कम से कम ''न मानना चाहते'' हों। वे फूट डालने वाले मुद्दे को सुलझाने में सहायता करने का प्रयास करके दोनों पक्षों में समझौता कराकर शांति स्थापित करने में भूमिका अदा कर सकते हैं। यदि झगड़ा करने वाले उस प्रश्न पर एक मत हो जाते हैं तो समझो समस्या सुलझ गई। यदि वे दोनों इस बात से सहमत हैं कि मुद्दा विश्वास की बात नहीं है, तो वे ''सहमत न होने को मान'' जाएंगे। फिर भी यदि कोई यह मानता है कि मतभेद विश्वास के विषय पर है तो समस्या अभी भी सुलझी नहीं है।[4] यदि दोनों पक्ष इस विचार को मानने को तैयार हैं कि यह मुद्दा विश्वास की बात का नहीं है, तो शायद वे अभी भी यही मानते होंगे कि यह इतनी महत्वपूर्ण बात है कि वे इस पर सहमत नहीं हो सकते। किसी प्रचारक को नियुज्त करने या निकालने या प्रार्थना भवन को गैर धार्मिक कार्यों के लिए इस्तेमाल किया जाए या नहीं, का प्रश्न इतना महत्वपूर्ण हो सकता है दोनों पक्षों को लगे कि वे इस बात पर सहमत नहीं हो सकते।

दूसरा, यदि झगड़े में शामिल लोगों में सहमति न बन पाए, तो कलीसिया के अगुवे उस मुद्दे को सुलझाने के लिए खुली चर्चा करने का अवसर दे सकते हैं। वास्तव में यदि किसी विषय पर विवाद पैदा हो जाए, तो एक से अधिक बार सभा बुलाई जा सकती है। सभा (या

सभाएं) निश्चित रूपरेखा तैयार करके होनी चाहिए जिसमें निम्नलिखित बातों को शामिल किया जा सकता है।

(1) *परमेश्वर से अगुआई मांगे।* इस प्रक्रिया में प्रार्थना एक महत्वपूर्ण भाग होना चाहिए। यदि हमें ''निरन्तर प्रार्थना में'' लगे रहना आवश्यक है (1 थिस्सलुनीकियों 5:17; लूका 18:1; रोमियों 12:12; कुलुस्सियों 4:2 भी देखिए), तो निश्चित रूप से हमें अपने अन्दर फूट डालने वाली बात को खत्म करने के लिए इकट्ठा होने के समय भी प्रार्थना करनी चाहिए। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि शांति और एकता के लिए की गई हमारी प्रार्थनाओं का उत्तर मिलेगा (मत्ती 7:7, 8; 1 यूहन्ना 5:14, 15)।

(2) *व्यक्तित्वों पर नहीं बल्कि मुद्दों पर ध्यान देना।* ज़ोर व्यक्तित्व पर नहीं बल्कि उस मुद्दे पर दिया जाना चाहिए जिसे सुलझाना है। विवाद को निपटाने का सबसे अच्छा ढंग उसे कलीसिया के सामने आई किसी चुनौती या समस्या के रूप में देखना है। अगुओं को ''मेरा'' और ''आपका'' मामला अर्थात निजी झगड़ा बनाने के बजाय अव्यैक्तिक चर्चा करनी चाहिए। प्रश्न को इस ढंग से बताना चाहिए ''कलीसिया के सामने यह स्थिति है। ये मुद्दे हैं। अब इनका समाधान क्या है और बेहतरीन हल क्या है?''

(3) *वैर भाव पर विजय पाना।* व्यक्तिगत वैर भाव को जिससे कोई भी मुद्दा गर्म हो जाता है, मुद्दों को निपटाने से पहले ही समाप्त कर देना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि कलीसिया का कोई अगुआ जो इसमें शामिल हो अपने ''विरोधी'' के प्रति नफ़रत रखता है, तो उसे अपने आप में अपनी इस भावना को मान लेना चाहिए और फिर उस पर काबू पाने के लिए जो कुछ भी आवश्यक हो करना चाहिए ताकि वह बिना किसी पक्षपात के मुद्दों को देख सके। वह यह भी याद रख सकता है कि एक दूसरे के प्रति नफ़रत को दूर करने का सबसे अच्छा ढंग उसे अपना मित्र बना लेना है।

(4) *स्पष्टता मांगें।* हर किसी को अपना विचार रखने का अवसर मिलना चाहिए। बेशक एक समय में एक ही व्यक्ति बोल सकता है। किसी को भी चर्चा पर हावी होने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। हर वक्ता को बराबर समय दिया जाना चाहिए।

(5) *मसीह जैसा मन दिखाएं।* हर किसी को मसीही ढंग से व्यवहार करने के लिए उत्साहित किया जाना चाहिए। कोई शोर शराबा न हो, व्यक्तिगत आरोप न लगाए जाएं, और किसी प्रकार की धमकी न देने दी जाए।

(6) *खुलापन दिखाएं।* सीमाओं में रहते हुए हर एक को बिना इस भय के कि उसका मज़ाक उड़ाया जाएगा या उसकी बात नहीं मानी जाएगी (चाहे उसके विचार न भी माने जाएं) अपने मन की बात कहने की अनुमति दी जानी चाहिए। *बहुत से मामलों में, केवल ''विरोधी'' को अपनी बात कहने देने से ही मण्डली में अधिकतर लोगों के विपरीत विचार रखने वाले लोगों को संतुष्ट किया जा सकता है।*

(7) *भावनाओं तथा तथ्यों पर विचार करें।* चर्चा में भाग लेने वाले सब लोगों को भावनाओं और जज़्बातों की कदर करनी चाहिए। कुछ विचारों को न मानना आसान है क्योंकि उनका आधार तथ्यों के बजाय भावनाएं होती हैं। परन्तु भावनाएं तथ्य होती हैं। लोग

जो महसूस करते हैं वही बात तथ्य बन जाता है जिस पर विचार करना आवश्यक है। सभी ''तथ्य'' या ''तर्क'' एक ही दिशा की ओर संकेत करते हो सकते हैं, परन्तु यदि सदस्यों के बहुमत की ''भावनाएं'' एक जैसी हों, तो वे ''तथ्यों'' से भारी हो सकती हैं।

(8) *समय सीमा रखें।* चर्चा के लिए समय सीमा ठहराई जा सकती है, और/या किसी को उस सभा का इंचार्ज नियुज़्त किया जा सकता है। अगुवे को चाहिए कि वह तटस्थ भूमिका निभाए ज़्योंकि उसका काम यह आश्वस्त करना है कि सब पक्षों की बात बिना किसी पक्षपात के सुनी गई है और चर्चा रचनात्मक निष्कर्ष की ओर बढ़ रही है। यह स्पष्ट हो जाने पर कि सब कुछ कहने के बावजूद कोई निष्कर्ष नहीं निकला। ऐसे व्यज़्ति को सभा समाप्त करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

(9) *समझौता करने की इच्छा जताएं।* चर्चा में भाग लेने वालों को इस बात की समझ होनी चाहिए कि समझौता करना हमेशा गलत नहीं होता। कई बार किसी विवादास्पद प्रश्न पर सर्वसज़्मति पर पहुंचने के लिए जिसका सज़्बन्ध किसी काम को करने के ढंग से हो (उस ''विश्वास'' के विषय में नहीं जो कलीसिया को ''एक ही बार सौंपा गया था''), कलीसिया के अगुओं को समझौता या किसी तरह निर्धारित कार्यक्रम में परिवर्तन करना पड़ सकता है।

(10) *किसी निर्णय पर सर्वसज़्मति लेकर ही पहुंचें।* निर्णय बहुमत से नहीं बल्कि सर्वसज़्मति से लिए जाने चाहिए।

लीडरशिप इन क्रिश्चियन मिनिस्ट्री में, जेज़्स मीन्ज़ ने आज कलीसिया के अगुओं के लिए निर्णय लेने के लिए प्रेरितों 15 अध्याय का इस्तेमाल करते हुए कलीसिया की समस्याओं को सुलझाने के लिए किसी सभा (या सभाओं) के लिए वैकल्पिक नमूना दिया है। उस अवसर पर होने वाली बातों के विषय में उसने कहा है:

> यदि हम प्रारज़्भिक कलीसिया के ढंग को एक अच्छे नमूने के रूप में मानते हैं, तो आधुनिक कलीसिया पर ये निष्कर्ष लागू होंगे:
>
> क. पूरी कलीसिया को प्रभावित करने वाले नीति सज़्बन्धी बड़े निर्णय दिलचस्पी लेने वाले सभी पक्षों के साथ खुली चर्चा के बाद ही लिए जाने चाहिए। अगुओं को ऐसी सभाओं की अध्यक्षता करनी चाहिए, वाद विवाद में भाग लेना चाहिए, मतभेद सुनने चाहिए, तर्क, तथ्यों और भावुकता से प्रभावित करने का प्रयास करना चाहिए और निर्णय लेने के लिए कलीसिया की अगुआई करनी चाहिए। उन्हें कठोर अर्थात वाद विवाद को सीमित करके या विवादपूर्ण, भावनात्मक मुद्दों पर एकवर्णी निर्णय लेने के ढंग अपनाने से बचना चाहिए। अगुओं को चाहिए कि सर्वसज़्मति बनने के लिए समय दें।
>
> ख. कलीसिया के अपने बड़े निर्णयों में परमेश्वर की अगुआई और आशीष पाने के लिए बहुत समय प्रार्थना में देना चाहिए।
>
> ग. यह जानने के लिए कि परमेश्वर की ज़्या इच्छा हो सकती है, सभी सज़्बन्धित आयतों का अध्ययन होना चाहिए। किसी मुद्दे को सुलझाने के लिए

पवित्र शास्त्र में से दिखाना कलीसिया के ऐल्डरों की प्रमुख ज़िम्मेदारी है। जिन्होंने बाइबल की समझ की बेहतर शिक्षा पाई है। पवित्र शास्त्र सभी विवादास्पद मुद्दों पर अपना निर्णय तो नहीं देता, पर उसमें हर मुद्दे के प्रासंगिक सिद्धांत होते ही हैं।[5]

तीसरा, कई बार कलीसिया की एकता प्रभु के लिए विश्वासी होकर कार्य करने के लिए भाइयों के अलग जाने से बनी रह सकती है। प्रेरितों 15:36-41 में दर्ज पौलुस और बरनबास के अनुभव से यही सुझाव मिलता है। पौलुस का कहना था कि वह और बरनबास पहली मिशनरी यात्रा के समय बनाई गई कलीसियाओं को देखने जाएंगे। बरनबास मान गया, लेकिन उसने अपने साथ यूहन्ना जो मरकुस कहलाता है (जो रिश्ते में उसका भाई लगता था, कुलुस्सियों 4:10) को ले जाना चाहा। लेकिन यूहन्ना जो मरकुस कहलाता है पहली यात्रा के समय छोड़कर चला गया था (प्रेरितों 13:13) और पौलुस उस पर उन्हें छोड़ जाने का आरोप लगाते हुए उसे अपने साथ नहीं ले जाना चाहता था। जिस कारण पौलुस और बरनबास में विवाद नहीं बल्कि ''काफी झगड़ा'' हुआ (प्रेरितों 15:39)। जिस कारण दोनों अलग हो गए: ''... वे एक दूसरे से अलग हो गए'' (प्रेरितों 15:39)। बरनबास और यूहन्ना मरकुस कुपरुस के टापू पर काम करने के लिए जहाज़ से चले गए, जहां वे पहली यात्रा के समय गए थे (प्रेरितों 13:4-12) और जहां बरनबास का घर था (प्रेरितों 4:36, 37)। पौलुस सीलास को लेकर उन नगरों में गया जहां उसने (प्रेरितों 15:40, 41) किलिकिया (उसका जन्म स्थान, प्रेरितों 22:3) से होते हुए एशिया माइनर में कलीसियाएं स्थापित की थीं।

हम पौलुस और बरनबास से सीख सकते हैं कि अच्छे और विश्वासी भाइयों में भी किसी बात पर असहमति होने के बावजूद भी वे बिना पाप के रह सकते हैं। मसीही लोग इन मामलों पर सहमत न होना मान सकते हैं, परन्तु कई बार यह असहमति बड़ी हो सकती है। वास्तव में वे इसे भाइयों के मिलकर काम करने में बदल सकते हैं। जब ऐसा होता है तो सबसे अच्छा फल उन भाइयों के लिए अलग होकर काम करना ही हो सकता है। उनके एक दूसरे से अलग होने से, पूरी कलीसिया में शांति रह सकती है। परमेश्वर के पूर्व प्रबन्ध में, लम्बे समय के लिए इसका लाभ हो सकता है। प्रेरितों 15 अध्याय के मामले में परिणाम यह हुआ था कि दो या तीन के बजाय चार लोग मिशन क्षेत्र में निकले थे और वे एक नहीं बल्कि दो क्षेत्रों में गए थे। सम्भवत: इससे दोहरी भलाई हुई होगी! परन्तु यदि हर बात ''मिलकर भलाई ही करती'' है (रोमियों 8:28), तो इसमें शामिल लोगों को अच्छा व्यवहार रखना चाहिए। ऐसा कोई संकेत नहीं है कि इस अनुभव के कारण पौलुस ने बरनबास के बारे में कोई बुरी बात कही हो, और न ही उसके मन में यूहन्ना मरकुस के प्रति कोई द्वेष था। वास्तव में बाद के अपने जीवन में उसने उस एक व्यक्ति के प्रति अपना सम्मान और मोह दिखाते हुए बात की जिसने एक समय उसे अपने साथ लेने से इन्कार कर दिया था (कुलुस्सियों 4:10; 2 तीमुथियुस 4:11)।

सारांश

झगड़े के सम्बन्ध में कलीसिया के अगुवे का लक्ष्य शांति से प्रेम करना, जहां तक सम्भव हो सके सब लोगों से मिलकर रहना (रोमियों 12:18) और शांति बनाए रखना है।

शांतिप्रिय व्यक्ति का उदाहरण अब्राहम में मिलता है। उसे अपने भतीजे लूत के साथ बहुत से झुंडों और चरवाहों को आशीष मिली थी (उत्पत्ति 13:2, 5)। कुछ देर तक इकट्ठे रहने और जाने के बाद, वह समय भी आया जब ''उस देश में उन दोनों की समाई न हो सकी कि वे इकट्ठे रहें: क्योंकि उनके पास बहुत धन था इसलिए वे इकट्ठे न रह सके। सो अब्राम, और लूत की भेड़ - बकरी, और गाय - बैल के चरवाहों में झगड़ा हुआ'' (उत्पत्ति 13:6)। फिर क्या किया जा सकता था? अब्राहम ने लूत से छोड़ जाने के लिए कहकर उसी क्षेत्र में रहने पर ज़ोर लगाया होगा। इसके बजाय उसने लूत को उस देश में रहने की अपनी पसन्द चुनने के लिए कहा:

> तब अब्राम लूत से कहने लगा, मेरे और तेरे बीच, और मेरे और तेरे चरवाहों के बीच में झगड़ा न होने पाए; क्योंकि हम लोग भाई बंधु हैं। क्या सारा देश तेरे साम्हने नहीं? सो मुझ से अलग हो, यदि तू बाईं ओर जाए तो मैं दाहिनी ओर जाऊंगा; और यदि तू दाहिनी ओर जाए, तो मैं बाईं और जाऊंगा (उत्पत्ति 13:8, 9)।

''आगे की कहानी'' हमें मालूम है। लूत ने ''अपना तम्बू सदोम के निकट खड़ा किया'' (उत्पत्ति 13:12), जिसका परिणाम अंततः अपने परिवार के साथ उसके लिए विनाशकारी हुआ। इसके विपरीत अब्राहम को परमेश्वर की ओर से जिसने उसे अपने देश से बुलाया था नई प्रतिज्ञाएं दी गईं (उत्पत्ति 13:14-17)।

हम शांति के लिए क्या मोल देने को तैयार हैं? ''किसी भी कीमत पर शांति'' अर्थात शिक्षा की शुद्धता के दाम पर शांति का बहुत ज्यादा मोल है। फिर भी हमें वही दाम चुकाने को तैयार रहना चाहिए जो पौलुस ने अपने परिवार में शांति लाने के लिए चुकाया था। हमें यह कहना सीखना चाहिए, ''मेरे और तेरे बीच, और मेरे और तेरे चरवाहों के बीच में झगड़ा न होने पाए; क्योंकि हम लोग भाई बंधु हैं।''

पाद टिप्पणियां

[1]द वर्ल्ड बुक इन्साइक्लोपीडिया डिक्शनरी, S.1. ''strife.'' [2]वेबस्टर'स न्यू कॉलेजियेट डिक्शनरी, S.1. ''strife.'' [3]आयतें जिनमें यह शब्द पाया जाता है हैं रोमियों 1:29; 13:13; 1 कुरिन्थियों 1:11; 3:3; 2 कुरिन्थियों 12:20; फिलिप्पियों 1:15; 1 तीमुथियुस 6:4 और तीतुस 3:9. [4]सुझावों के लिए, ''शिक्षा सम्बन्धी मुद्दों का सामना'' पाठ, विशेष रूप से पृष्ठ 142 पर मिलने वाली रोमियों 14 अध्याय की चर्चा देखिए। [5]जेम्स ई. मीन्ज़, *लीडरशिप इन क्रिश्चियन मिनिस्ट्री* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशी.: बेकर बुक हाउस, 1989), 192-93.